ऋषि दयानन्द की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन

भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिन्दी भाषी गुजराती होते हुए पराधीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकर मन, वचन व कर्म से इसका प्रचार-प्रसार किया।

16 दिसम्बर, 1872 को स्वामीजी वैदिक मान्यताओं के प्रचारार्थ भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता पहुंचे थे और वहां उन्होंनें अनेक सभाओं में व्याख्यान दिये। ऐसी ही एक सभा में स्वामी दयानन्द के संस्कृत भाषण का बंगला में अनुवाद गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के उपाचार्य पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न कर रहे थे। दुभाषिये वा अनुवादक का धर्म वक्ता के आशय को स्पष्ट करना होता है परन्तु श्री न्यायरत्न महाशय ने स्वामी जी के वक्तव्य को अनेक स्थानों पर व्याख्यान को अनुदित न कर अपनी उनसे विपरीत मान्यताओं को सम्मिलित कर वक्ता के आशय के विपरीत प्रकट किया जिससे व्याख्यान में उपस्थित संस्कृत कालेज के छात्रों ने उनका विरोघ किया। विरोध के कारण श्री न्यायरत्न बीच में ही सभा छोड़कर चले गये थे। प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेता श्री केशवचन्द्र सेन भी इस सभा में उपस्थित थे। बाद में इस घटना का विवेचन कर उन्होंने स्वामी जी को सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा हिन्दी को अपनायें। गुण ग्राहक स्वाभाव वाले स्वामी दयानन्द जी ने तत्काल यह सुझाव स्वीकार कर लिया। यह दिन हिन्दी के इतिहास की एक प्रमुख घटना थी कि जब एक 48 वर्षीय गुजराती मातृभाषा के संस्कृत के अद्वितीय विद्वान ने हिन्दी को अपना लिया। ऐसा दूसरा उदाहरण इतिहास में अनुपलब्ध है। इसके प्श्चात स्वामी दयानन्द जी ने जो प्रवचन किए उनमें वह हिन्दी का ही प्रयोग करने लगे।

सन् 1882 में ब्रिटिश सरकार ने डा. हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन की स्थापना कर इससे राजकार्य के लिए उपयुक्त भाषा की सिफारिश करने को कहा। यह आयोग हण्टर कमीशन के नाम से जाना गया। यद्यपि उन दिनों सरकारी कामकाज में उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी का प्रयोग होता था परन्तु स्वामी दयानन्द के सन् 1872 से 1882 तक व्याख्यानों, पुस्तकों वा ग्रन्थों, शास्त्रार्थों तथा आर्य समाजों द्वारा मौखिक प्रचार एवं उसके अनुयायियों की हिन्दी निष्ठा से हिन्दी भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गई थी। इस हण्टर कमीशन के माध्यम से हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए स्वामी जी ने देश की सभी आर्य समाजों को पत्र लिखकर बड़ी संख्या में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन भेजने की प्रेरणा की और जहां से ज्ञापन नहीं भेजे गये उन्हें स्मरण पत्र भेज कर सावधान किया। आर्य समाज फर्रूखाबाद के स्तम्भ बाबू दुर्गादास

को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा, “यह काम एक के करने का नहीं है और चूक (भूल-चूक) होने पर वह अवसर पुनः आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ (अर्थात् हिन्दी राजभाषा बना दी गई) तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायेगी।” स्वामीजी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप आर्य समाजों द्वारा देश के कोने-कोने से आयोग को बड़ी संख्या में लोगों के हस्ताक्षर कराकर ज्ञापन भेजे गए। कानपुर से हण्टर कमीशन को दो सौ मैमोरियल भेजे गए जिन पर दो लाख लोगों ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हस्ताक्षर किए थे। हिन्दी को गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा किया गया यह कार्य भी इतिहास में अन्यतम घटना है। हमें इस सन्दर्भ में दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि हिन्दी के विद्वानों ने स्वामी दयानन्द के इस योगदान की जाने अनजाने घोर उपेक्षा की है। हमें इसमें उनके पक्षपातपूर्ण व्यवहार की गन्ध आती है।

आर्य बंधुओं को उन्होंने नागरी लिपि और हिंदी भाषा में पत्र पत्रिकाएं निकालने की प्रेरणा देते हुए स्वयं भी ‘भारत सुदशा प्रवर्त्तक’ पत्र हिंदी में निकाला। उन्होंने अपना विख्यात ग्रंथ ‘सत्यार्थ प्रकाश हिंदी भाषा में ही लिखा। गोपाल प्रसाद कास ने उन्हें हिंदी का प्रथम सेनापति कहते हुए लिखा है- यह उस शताब्दी की बात है जब आसेतु हिमालय से कन्याकुमारी और कलकत्ता से लेकर बंबई तक भारत की जनता हिंदी समझती और बोलती भी थी लेकिन उसका नेतृत्व करने वाला कोई महापुरूष उस समय नहीं था। स्वामी जी ने यह गरिमामय नेतृत्व कदाचित सबसे पहले प्रदान किया। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने भी ‘हिंदी साहित्य के इतिहास’ में उनके महत्व को स्वीकार किया है।

मूल्य 150 रूपए.
प्राप्ति के लिए 7015591564 पर WHATSAPP करे,